भगवान् रामकी सुग्रीवसे मैत्री

सखा सोच त्यागहु बल मोरें। सब बिधि घटब काज मैं तोरें॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्रीरामचरितमानस

चतुर्थ सोपान

किष्किन्धाकाण्ड

श्लोक

कुन्देन्दीवरसुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ
शोभाढ्यौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ।
मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ
सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः॥ १॥

कुन्दपुष्प और नील कमलके समान सुन्दर गौर एवं श्यामवर्ण, अत्यन्त बलवान्, विज्ञानके धाम, शोभासम्पन्न, श्रेष्ठ धनुर्धर, वेदोंके द्वारा वन्दित, गौ एवं ब्राह्मणोंके समूहके प्रिय [अथवा प्रेमी], मायासे मनुष्यरूप धारण किये हुए, श्रेष्ठ धर्मके लिये कवचस्वरूप, सबके हितकारी, श्रीसीताजीकी खोजमें लगे हुए, पथिकरूप रघुकुलके श्रेष्ठ श्रीरामजी और श्रीलक्ष्मणजी दोनों भाई निश्चय ही हमें भक्तिप्रद हों॥ १॥

ब्रह्माम्भोधिसमुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चाव्ययं
श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुन्दरवरे संशोभितं सर्वदा।
संसारामयभेषजं सुखकरं श्रीजानकीजीवनं
धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम्॥ २॥

वे सुकृती (पुण्यात्मा पुरुष) धन्य हैं जो वेदरूपी समुद्र [के मथने] से उत्पन्न हुए कलियुगके मलको सर्वथा नष्ट कर देनेवाले, अविनाशी, भगवान् श्रीशम्भुके सुन्दर एवं श्रेष्ठ मुखरूपी चन्द्रमामें सदा शोभायमान, जन्म-मरणरूपी रोगके औषध, सबको सुख देनेवाले और श्रीजानकीजीके जीवनस्वरूप श्रीरामनामरूपी अमृतका निरन्तर पान करते रहते हैं॥ २॥

सो०— मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानि कर।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न॥

जहाँ श्रीशिव-पार्वती बसते हैं, उस काशीको मुक्तिकी जन्मभूमि, ज्ञानकी खान और पापोंका नाश करनेवाली जानकर उसका सेवन क्यों न किया जाय?

जरत सकल सुर बृंद बिषम गरल जेहिं पान किय।
तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस॥

जिस भीषण हलाहल विषसे सब देवतागण जल रहे थे उसको जिन्होंने स्वयं पान कर लिया, रे मन्द मन! तू उन शङ्करजीको क्यों नहीं भजता? उनके समान कृपालु [और] कौन है?

आगें चले बहुरि रघुराया। रिष्यमूक पर्बत निअराया॥
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा। आवत देखि अतुल बल सींवा॥

श्रीरघुनाथजी फिर आगे चले। ऋष्यमूक पर्वत निकट आ गया। वहाँ (ऋष्यमूक पर्वतपर) मन्त्रियोंसहित सुग्रीव रहते थे। अतुलनीय बलकी सीमा श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीको आते देखकर— ॥ १ ॥

अति सभीत कह सुनु हनुमाना। पुरुष जुगल बल रूप निधाना॥
धरि बटु रूप देखु तैं जाई। कहेसु जानि जियँ सयन बुझाई॥

सुग्रीव अत्यन्त भयभीत होकर बोले—हे हनुमान्! सुनो, ये दोनों पुरुष बल और रूपके निधान हैं। तुम ब्रह्मचारीका रूप धारण करके जाकर देखो। अपने हृदयमें उनकी यथार्थ बात जानकर मुझे इशारेसे समझाकर कह देना॥ २॥

पठए बालि होहिं मन मैला। भागौं तुरत तजौं यह सैला॥
बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ॥

यदि वे मनके मलिन बालिके भेजे हुए हों तो मैं तुरंत ही इस पर्वतको छोड़कर भाग जाऊँ। [यह सुनकर] हनुमान्‌जी ब्राह्मणका रूप धरकर वहाँ गये और मस्तक नवाकर इस प्रकार पूछने लगे— ॥ ३ ॥

को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा॥
कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी॥

हे वीर! साँवले और गोरे शरीरवाले आप कौन हैं, जो क्षत्रियके रूपमें वनमें फिर रहे हैं? हे स्वामी! कठोर भूमिपर कोमल चरणोंसे चलनेवाले आप किस कारण वनमें विचर रहे हैं?॥ ४॥

मृदुल मनोहर सुंदर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता॥
की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ॥

मनको हरण करनेवाले आपके सुन्दर, कोमल अंग हैं, और आप वनके दुःसह धूप और वायुको सह रहे हैं। क्या आप ब्रह्मा, विष्णु, महेश—इन तीन देवताओंमेंसे कोई हैं, या आप दोनों नर और नारायण हैं॥ ५॥

दो०— जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार॥ १॥

अथवा आप जगत्‌के मूल कारण और सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी स्वयं भगवान् हैं, जिन्होंने लोगोंको भवसागरसे पार उतारने तथा पृथ्वीका भार नष्ट करनेके लिये मनुष्य-रूपमें अवतार लिया है?॥ १॥

कोसलेस दसरथ के जाए। हम पितु बचन मानि बन आए॥
नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई॥

[श्रीरामचन्द्रजीने कहा—] हम कोसलराज दशरथजीके पुत्र हैं और पिताका वचन मानकर वन आये हैं। हमारे राम-लक्ष्मण नाम हैं, हम दोनों भाई हैं। हमारे साथ सुन्दर सुकुमारी स्त्री थी॥ १॥

इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही॥
आपन चरित कहा हम गाई। कहहु बिप्र निज कथा बुझाई॥

यहाँ (वनमें) राक्षसने [मेरी पत्नी] जानकीको हर लिया। हे ब्राह्मण! हम उसे ही खोजते फिरते हैं। हमने तो अपना चरित्र कह सुनाया। अब हे ब्राह्मण! अपनी कथा समझाकर कहिये॥ २॥

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना॥
पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष कै रचना॥

प्रभुको पहचानकर हनुमान्‌जी उनके चरण पकड़कर पृथ्वीपर गिर पड़े (उन्होंने साष्टाङ्ग दण्डवत्-प्रणाम किया)। [शिवजी कहते हैं—] हे पार्वती! वह सुख वर्णन नहीं किया जा सकता। शरीर पुलकित है, मुखसे वचन नहीं निकलता। वे प्रभुके सुन्दर वेषकी रचना देख रहे हैं!॥ ३॥

पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदयँ निज नाथहि चीन्ही॥
मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं॥

फिर धीरज धरकर स्तुति की। अपने नाथको पहचान लेनेसे हृदयमें हर्ष हो रहा है। [फिर हनुमान्‌जीने कहा—] हे स्वामी! मैंने जो पूछा वह मेरा पूछना तो न्याय था, [वर्षोंके बाद आपको देखा, वह भी तपस्वीके वेषमें और मेरी वानरी-बुद्धि, इससे मैं तो आपको पहचान न सका और अपनी परिस्थितिके अनुसार मैंने आपसे पूछा] परन्तु आप मनुष्यकी तरह कैसे पूछ रहे हैं?॥ ४॥

तव माया बस फिरउँ भुलाना। ताते मैं नहिं प्रभु पहिचाना॥

मैं तो आपकी मायाके वश भूला फिरता हूँ; इसीसे मैंने अपने स्वामी (आप) को नहीं पहचाना॥ ५॥

दो०— एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान॥ २॥

एक तो मैं यों ही मन्द हूँ, दूसरे मोहके वशमें हूँ, तीसरे हृदयका कुटिल और अज्ञान हूँ, फिर हे दीनबन्धु भगवान्! प्रभु (आप) ने भी मुझे भुला दिया!॥ २॥

जदपि नाथ बहु अवगुन मोरें। सेवक प्रभुहि परै जनि भोरें॥
नाथ जीव तव मायाँ मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा॥

हे नाथ! यद्यपि मुझमें बहुत-से अवगुण हैं, तथापि सेवक स्वामीकी विस्मृतिमें न पड़े (आप उसे न भूल जायँ) हे नाथ! जीव आपकी मायासे मोहित है। वह आपहीकी कृपासे निस्तार पा सकता है॥ १॥

ता पर मैं रघुबीर दोहाई। जानउँ नहिं कछु भजन उपाई॥
सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें॥

उसपर हे रघुवीर! मैं आपकी दुहाई (शपथ) करके कहता हूँ कि मैं भजन-साधन कुछ नहीं जानता। सेवक स्वामीके और पुत्र माताके भरोसे निश्चिन्त रहता है। प्रभुको सेवकका पालन-पोषण करते ही बनता है (करना ही पड़ता है)॥ २॥

अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई॥
तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा॥

ऐसा कहकर हनुमान्‌जी अकुलाकर प्रभुके चरणोंपर गिर पड़े, उन्होंने अपना असली शरीर प्रकट कर दिया। उनके हृदयमें प्रेम छा गया। तब श्रीरघुनाथजीने उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया और अपने नेत्रोंके जलसे सींचकर शीतल किया॥ ३॥

सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना॥
समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ॥

[फिर कहा—] हे कपि! सुनो, मनमें ग्लानि मत मानना (मन छोटा न करना)। तुम मुझे लक्ष्मणसे भी दूने प्रिय हो। सब कोई मुझे समदर्शी कहते हैं (मेरे लिये न कोई प्रिय है न अप्रिय) पर मुझको सेवक प्रिय है, क्योंकि वह अनन्यगति होता है (मुझे छोड़कर उसको कोई दूसरा सहारा नहीं होता)॥ ४॥

दो०— सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥ ३॥

और हे हनुमान्! अनन्य वही है जिसकी ऐसी बुद्धि कभी नहीं टलती कि मैं सेवक हूँ और यह चराचर (जड-चेतन) जगत् मेरे स्वामी भगवान्‌का रूप है॥ ३॥

देखि पवनसुत पति अनुकूला। हृदयँ हरष बीती सब सूला॥
नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई॥

स्वामीको अनुकूल (प्रसन्न) देखकर पवनकुमार हनुमान्‌जीके हृदयमें हर्ष छा गया

और उनके सब दुःख जाते रहे। [उन्होंने कहा—] हे नाथ! इस पर्वतपर वानरराज सुग्रीव रहता हैं, वह आपका दास है॥ १॥

तेहि सन नाथ मयत्री कीजे। दीन जानि तेहि अभय करीजे॥
सो सीता कर खोज कराइहि। जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि॥

हे नाथ! उससे मित्रता कीजिये और उसे दीन जानकर निर्भय कर दीजिये। वह सीताजीकी खोज करावेगा और जहाँ-तहाँ करोड़ों वानरोंको भेजेगा॥ २॥

एहि बिधि सकल कथा समुझाई। लिए दुऔ जन पीठि चढ़ाई॥
जब सुग्रीवँ राम कहुँ देखा। अतिसय जन्म धन्य करि लेखा॥

इस प्रकार सब बातें समझाकर हनुमान्‌जीने (श्रीराम-लक्ष्मण) दोनों जनोंको पीठपर चढ़ा लिया। जब सुग्रीवने श्रीरामचन्द्रजीको देखा तो अपने जन्मको अत्यन्त धन्य समझा॥ ३॥

सादर मिलेउ नाइ पद माथा। भेंटेउ अनुज सहित रघुनाथा॥
कपि कर मन बिचार एहि रीती। करिहहिं बिधि मो सन ए प्रीती॥

सुग्रीव चरणोंमें मस्तक नवाकर आदरसहित मिले। श्रीरघुनाथजी भी छोटे भाईसहित उनसे गले लगकर मिले। सुग्रीव मनमें इस प्रकार सोच रहे हैं कि हे विधाता! क्या ये मुझसे प्रीति करेंगे?॥ ४॥

दो०— तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ॥ ४॥

तब हनुमान्‌जीने दोनों ओरकी सब कथा सुनाकर अग्निको साक्षी देकर परस्पर दृढ़ करके प्रीति जोड़ दी (अर्थात् अग्निकी साक्षी देकर प्रतिज्ञापूर्वक उनकी मैत्री करवा दी)॥ ४॥

कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा। लछिमन राम चरित सब भाषा॥
कह सुग्रीव नयन भरि बारी। मिलिहि नाथ मिथिलेसकुमारी॥

दोनोंने [हृदयसे] प्रीति की, कुछ भी अन्तर नहीं रखा। तब लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीका सारा इतिहास कहा। सुग्रीवने नेत्रोंमें जल भरकर कहा—हे नाथ! मिथिलेशकुमारी जानकीजी मिल जायँगी॥ १॥

मंत्रिन्ह सहित इहाँ एक बारा। बैठ रहेउँ मैं करत बिचारा॥
गगन पंथ देखी मैं जाता। परबस परी बहुत बिलपाता॥

मैं एक बार यहाँ मन्त्रियोंके साथ बैठा हुआ कुछ विचार कर रहा था। तब मैंने पराये (शत्रु) के वशमें पड़ी बहुत विलाप करती हुई सीताजीको आकाशमार्गसे जाते देखा था॥ २॥

राम राम हा राम पुकारी। हमहि देखि दीन्हेउ पट डारी॥
मागा राम तुरत तेहिं दीन्हा। पट उर लाइ सोच अति कीन्हा॥

हमें देखकर उन्होंने 'राम! राम! हा राम!' पुकारकर वस्त्र गिरा दिया था। श्रीरामजीने उसे माँगा, तब सुग्रीवने तुरंत ही दे दिया। वस्त्रको हृदयसे लगाकर श्रीरामचन्द्रजीने बहुत ही सोच किया॥ ३॥

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। तजहु सोच मन आनहु धीरा॥
सब प्रकार करिहउँ सेवकाई। जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई॥

सुग्रीवने कहा—हे रघुवीर! सुनिये, सोच छोड़ दीजिये और मनमें धीरज लाइये। मैं सब प्रकारसे आपकी सेवा करूँगा, जिस उपायसे जानकीजी आकर आपको मिलें॥ ४॥

दो०— सखा बचन सुनि हरषे कृपासिंधु बलसींव।
कारन कवन बसहु बन मोहि कहहु सुग्रीव॥ ५॥

कृपाके समुद्र और बलकी सीमा श्रीरामजी सखा सुग्रीवके वचन सुनकर हर्षित हुए। [और बोले—] हे सुग्रीव! मुझे बताओ, तुम वनमें किस कारण रहते हो?॥ ५॥

नाथ बालि अरु मैं द्वौ भाई। प्रीति रही कछु बरनि न जाई॥
मयसुत मायावी तेहि नाऊँ। आवा सो प्रभु हमरें गाऊँ॥

[सुग्रीवने कहा—] हे नाथ! बालि और मैं दो भाई हैं। हम दोनोंमें ऐसी प्रीति थी कि वर्णन नहीं की जा सकती। हे प्रभो! मय दानवका एक पुत्र था, उसका नाम मायावी था। एक बार वह हमारे गाँवमें आया॥ १॥

अर्ध राति पुर द्वार पुकारा। बाली रिपु बल सहै न पारा॥
धावा बालि देखि सो भागा। मैं पुनि गयउँ बंधु सँग लागा॥

उसने आधी रातको नगरके फाटकपर आकर पुकारा (ललकारा)। बालि शत्रुके बल (ललकार) को सह नहीं सका। वह दौड़ा, उसे देखकर मायावी भागा। मैं भी भाईके सङ्ग लगा चला गया॥ २॥

गिरिबर गुहाँ पैठ सो जाई। तब बालीं मोहि कहा बुझाई॥
परिखेसु मोहि एक पखवारा। नहिं आवौं तब जानेसु मारा॥

वह मायावी एक पर्वतकी गुफामें जा घुसा। तब बालिने मुझे समझाकर कहा—तुम एक पखवाड़े (पंद्रह दिन) तक मेरी बाट देखना। यदि मैं उतने दिनोंमें न आऊँ तो जान लेना कि मैं मारा गया॥ ३॥

मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी। निसरी रुधिर धार तहँ भारी॥
बालि हतेसि मोहि मारिहि आई। सिला देइ तहँ चलेउँ पराई॥

हे खरारि! मैं वहाँ महीनेभरतक रहा। वहाँ (उस गुफामेंसे) रक्तकी बड़ी भारी धारा निकली। तब [मैंने समझा कि] उसने बालिको मार डाला, अब आकर मुझे मारेगा। इसलिये मैं वहाँ (गुफाके द्वारपर) एक शिला लगाकर भाग आया॥ ४॥

मंत्रिन्ह पुर देखा बिनु साईं। दीन्हेउ मोहि राज बरिआईं॥
बाली ताहि मारि गृह आवा। देखि मोहि जियँ भेद बढ़ावा॥

मन्त्रियोंने नगरको बिना स्वामी (राजा) का देखा, तो मुझको जबर्दस्ती राज्य दे दिया। बालि उसे मारकर घर आ गया। मुझे [राजसिंहासनपर] देखकर उसने जीमें भेद बढ़ाया (बहुत ही विरोध माना)। [उसने समझा कि यह राज्यके लोभसे ही गुफाके द्वारपर शिला दे आया था, जिससे मैं बाहर न निकल सकूँ; और यहाँ आकर राजा बन बैठा]॥ ५॥

रिपु सम मोहि मारेसि अति भारी। हरि लीन्हेसि सर्बसु अरु नारी॥
ताकें भय रघुबीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला॥

उसने मुझे शत्रुके समान बहुत अधिक मारा और मेरा सर्वस्व तथा मेरी स्त्रीको भी छीन लिया। हे कृपालु रघुवीर! मैं उसके भयसे समस्त लोकोंमें बेहाल होकर फिरता रहा॥ ६॥

इहाँ साप बस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहउँ मन माहीं॥
सुनि सेवक दुख दीनदयाला। फरकि उठीं द्वै भुजा बिसाला॥

वह शापके कारण यहाँ नहीं आता, तो भी मैं मनमें भयभीत रहता हूँ। सेवकका दुःख सुनकर दीनोंपर दया करनेवाले श्रीरघुनाथजीकी दोनों विशाल भुजाएँ फड़क उठीं॥ ७॥

दो०— सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं प्रान॥ ६॥

[उन्होंने कहा—] हे सुग्रीव! सुनो, मैं एक ही बाणसे बालिको मार डालूँगा। ब्रह्मा और रुद्रकी शरणमें जानेपर भी उसके प्राण न बचेंगे॥ ६॥

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना॥

जो लोग मित्रके दुःखसे दुःखी नहीं होते, उन्हें देखनेसे ही बड़ा पाप लगता है। अपने पर्वतके समान दुःखको धूलके समान और मित्रके धूलके समान दुःखको सुमेरु (बड़े भारी पर्वत) के समान जाने॥ १॥

जिन्ह कें असि मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा॥

जिन्हें स्वभावसे ही ऐसी बुद्धि प्राप्त नहीं है, वे मूर्ख हठ करके क्यों किसीसे मित्रता करते हैं? मित्रका धर्म है कि वह मित्रको बुरे मार्गसे रोककर अच्छे मार्गपर चलावे। उसके गुण प्रकट करे और अवगुणोंको छिपावे॥ २॥

देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥

देने-लेनेमें मनमें शंका न रखे। अपने बलके अनुसार सदा हित ही करता रहे। विपत्तिके समयमें तो सदा सौगुना स्नेह करे। वेद कहते हैं कि संत (श्रेष्ठ) मित्रके गुण (लक्षण) ये हैं॥ ३॥

आगें कह मृदु बचन बनाई। पाछें अनहित मन कुटिलाई॥
जाकर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई॥

जो सामने तो बना-बनाकर कोमल वचन कहता है और पीठ-पीछे बुराई करता है तथा मनमें कुटिलता रखता है—हे भाई! [इस तरह] जिसका मन साँपकी चालके समान टेढ़ा है, ऐसे कुमित्रको तो त्यागनेमें ही भलाई है॥ ४॥

सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी॥
सखा सोच त्यागहु बल मोरें। सब बिधि घटब काज मैं तोरें॥

मूर्ख सेवक, कंजूस राजा, कुलटा स्त्री और कपटी मित्र—ये चारों शूलके समान [पीड़ा देनेवाले] हैं। हे सखा! मेरे बलपर अब तुम चिन्ता छोड़ दो। मैं सब प्रकारसे तुम्हारे काम आऊँगा (तुम्हारी सहायता करूँगा)॥ ५॥

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महाबल अति रनधीरा॥
दुंदुभि अस्थि ताल देखराए। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए॥

सुग्रीवने कहा—हे रघुवीर! सुनिये, बालि महान् बलवान् और अत्यन्त रणधीर है। फिर सुग्रीवने श्रीरामजीको दुन्दुभि राक्षसकी हड्डियाँ और तालके वृक्ष दिखलाये। श्रीरघुनाथजीने उन्हें बिना ही परिश्रमके (आसानीसे) ढहा दिया॥ ६॥

देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती। बालि बधब इन्ह भइ परतीती॥
बार बार नावइ पद सीसा। प्रभुहि जानि मन हरष कपीसा॥

श्रीरामजीका अपरिमित बल देखकर सुग्रीवकी प्रीति बढ़ गयी और उन्हें विश्वास हो गया कि ये बालिका वध अवश्य करेंगे। वे बार-बार चरणोंमें सिर नवाने लगे। प्रभुको पहचानकर सुग्रीव मनमें हर्षित हो रहे थे॥ ७॥

उपजा ग्यान बचन तब बोला। नाथ कृपाँ मन भयउ अलोला॥
सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहउँ सेवकाई॥

जब ज्ञान उत्पन्न हुआ तब वे ये वचन बोले कि हे नाथ! आपकी कृपासे अब मेरा मन स्थिर हो गया। सुख, सम्पत्ति, परिवार और बड़ाई (बड़प्पन) सबको त्यागकर मैं आपकी सेवा ही करूँगा॥ ८॥

ए सब रामभगति के बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक॥
सत्रु मित्र सुख दुख जग माहीं। मायाकृत परमारथ नाहीं॥

क्योंकि आपके चरणोंकी आराधना करनेवाले संत कहते हैं कि ये सब (सुख-सम्पत्ति आदि) रामभक्तिके विरोधी हैं। जगत्‌में जितने भी शत्रु-मित्र और सुख-दुःख [आदि द्वन्द्व] हैं, सब-के-सब मायारचित हैं, परमार्थतः (वास्तवमें) नहीं हैं॥ ९॥

बालि परम हित जासु प्रसादा। मिलेहु राम तुम्ह समन बिषादा॥
सपनें जेहि सन होइ लराई। जागें समुझत मन सकुचाई॥

हे श्रीरामजी! बालि तो मेरा परम हितकारी है, जिसकी कृपासे शोकका नाश करनेवाले आप मुझे मिले; और जिसके साथ अब स्वप्नमें भी लड़ाई हो तो जागनेपर उसे समझकर मनमें संकोच होगा [कि स्वप्नमें भी मैं उससे क्यों लड़ा] ॥ १० ॥

अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। सब तजि भजनु करौं दिन राती॥
सुनि बिराग संजुत कपि बानी। बोले बिहँसि रामु धनुपानी॥

हे प्रभो! अब तो इस प्रकार कृपा कीजिये कि सब छोड़कर दिन-रात मैं आपका भजन ही करूँ। सुग्रीवकी वैराग्ययुक्त वाणी सुनकर (उसके क्षणिक वैराग्यको देखकर) हाथमें धनुष धारण करनेवाले श्रीरामजी मुसकराकर बोले— ॥ ११ ॥

जो कछु कहेहु सत्य सब सोई। सखा बचन मम मृषा न होई॥
नट मरकट इव सबहि नचावत। रामु खगेस बेद अस गावत॥

तुमने जो कुछ कहा है, वह सभी सत्य है; परन्तु हे सखा! मेरा वचन मिथ्या नहीं होता (अर्थात् बालि मारा जायगा और तुम्हें राज्य मिलेगा)। [काकभुशुण्डिजी कहते हैं कि—] हे पक्षियोंके राजा गरुड़! नट (मदारी) के बंदरकी तरह श्रीरामजी सबको नचाते हैं, वेद ऐसा कहते हैं॥ १२ ॥

लै सुग्रीव संग रघुनाथा। चले चाप सायक गहि हाथा॥
तब रघुपति सुग्रीव पठावा। गर्जेसि जाइ निकट बल पावा॥

तदनन्तर सुग्रीवको साथ लेकर और हाथोंमें धनुष-बाण धारण करके श्रीरघुनाथजी चले। तब श्रीरघुनाथजीने सुग्रीवको बालिके पास भेजा। वह श्रीरामजीका बल पाकर बालिके निकट जाकर गरजा॥ १३ ॥

सुनत बालि क्रोधातुर धावा। गहि कर चरन नारि समुझावा॥
सुनु पति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवा। ते द्वौ बंधु तेज बल सींवा॥

बालि सुनते ही क्रोधमें भरकर वेगसे दौड़ा। उसकी स्त्री ताराने चरण पकड़कर उसे समझाया कि हे नाथ! सुनिये, सुग्रीव जिनसे मिले हैं वे दोनों भाई तेज और बलकी सीमा हैं॥ १४ ॥

कोसलेस सुत लछिमन रामा। कालहु जीति सकहिं संग्रामा॥

वे कोसलाधीश दशरथजीके पुत्र राम और लक्ष्मण संग्राममें कालको भी जीत सकते हैं॥ १५ ॥

दो०— कह बाली सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ।
जौं कदाचि मोहि मारहिं तौ पुनि होउँ सनाथ॥ ७॥

बालिने कहा—हे भीरु! (डरपोक) प्रिये! सुनो, श्रीरघुनाथजी समदर्शी हैं। जो

कदाचित् वे मुझे मारेंगे ही तो मैं सनाथ हो जाऊँगा (परमपद पा जाऊँगा) ॥ ७ ॥

अस कहि चला महा अभिमानी। तृन समान सुग्रीवहि जानी॥
भिरे उभौ बाली अति तर्जा। मुठिका मारि महाधुनि गर्जा॥

ऐसा कहकर वह महान् अभिमानी बालि सुग्रीवको तिनकेके समान जानकर चला। दोनों भिड़ गये। बालिने सुग्रीवको बहुत धमकाया और घूँसा मारकर बड़े जोरसे गरजा॥ १ ॥

तब सुग्रीव बिकल होइ भागा। मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा॥
मैं जो कहा रघुबीर कृपाला। बंधु न होइ मोर यह काला॥

तब सुग्रीव व्याकुल होकर भागा। घूँसेकी चोट उसे वज्रके समान लगी। [सुग्रीवने आकर कहा—] हे कृपालु रघुवीर! मैंने आपसे पहले ही कहा था कि बालि मेरा भाई नहीं है, काल है॥ २ ॥

एकरूप तुम्ह भ्राता दोऊ। तेहि भ्रम तें नहिं मारेउँ सोऊ॥
कर परसा सुग्रीव सरीरा। तनु भा कुलिस गई सब पीरा॥

[श्रीरामजीने कहा—] तुम दोनों भाइयोंका एक-सा ही रूप है। इसी भ्रमसे मैंने उसको नहीं मारा। फिर श्रीरामजीने सुग्रीवके शरीरको हाथसे स्पर्श किया, जिससे उसका शरीर वज्रके समान हो गया और सारी पीड़ा जाती रही॥ ३ ॥

मेली कंठ सुमन कै माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला॥
पुनि नाना बिधि भई लराई। बिटप ओट देखहिं रघुराई॥

तब श्रीरामजीने सुग्रीवके गलेमें फूलोंकी माला डाल दी और फिर उसे बड़ा भारी बल देकर भेजा। दोनोंमें पुनः अनेक प्रकारसे युद्ध हुआ। श्रीरघुनाथजी वृक्षकी आड़से देख रहे थे॥ ४ ॥

दो०— बहु छल बल सुग्रीव कर हियँ हारा भय मानि।
मारा बालि राम तब हृदय माझ सर तानि॥ ८ ॥

सुग्रीवने बहुत-से छल-बल किये, किन्तु [अन्तमें] भय मानकर हृदयसे हार गया। तब श्रीरामजीने तानकर बालिके हृदयमें बाण मारा॥ ८ ॥

परा बिकल महि सर के लागें। पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगें॥
स्याम गात सिर जटा बनाएँ। अरुन नयन सर चाप चढ़ाएँ॥

बाणके लगते ही बालि व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। किन्तु प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको आगे देखकर वह फिर उठ बैठा। भगवान्‌का श्याम शरीर है, सिरपर जटा बनाये हैं, लाल नेत्र हैं, बाण लिये हैं और धनुष चढ़ाये हैं॥ १ ॥

पुनि पुनि चितइ चरन चित दीन्हा। सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा॥
हृदयँ प्रीति मुख बचन कठोरा। बोला चितइ राम की ओरा॥

बालिने बार-बार भगवान्‌की ओर देखकर चित्तको उनके चरणोंमें लगा दिया।

प्रभुको पहचानकर उसने अपना जन्म सफल माना। उसके हृदयमें प्रीति थी, पर मुखमें कठोर वचन थे। वह श्रीरामजीकी ओर देखकर बोला— ॥ २ ॥

धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याध की नाईं॥
मैं बैरी सुग्रीव पिआरा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा॥

हे गोसाईं! आपने धर्मकी रक्षाके लिये अवतार लिया है और मुझे व्याधकी तरह (छिपकर) मारा? मैं वैरी और सुग्रीव प्यारा? हे नाथ! किस दोषसे आपने मुझे मारा? ॥ ३ ॥

अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी॥
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई॥

[श्रीरामजीने कहा—] हे मूर्ख! सुन, छोटे भाईकी स्त्री, बहिन, पुत्रकी स्त्री और कन्या—ये चारों समान हैं। इनको जो कोई बुरी दृष्टिसे देखता है, उसे मारनेमें कुछ भी पाप नहीं होता ॥ ४ ॥

मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करसि न काना॥
मम भुज बल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी॥

हे मूढ़! तुझे अत्यन्त अभिमान है। तूने अपनी स्त्रीकी सीखपर भी कान (ध्यान) नहीं दिया। सुग्रीवको मेरी भुजाओंके बलका आश्रित जानकर भी अरे अधम अभिमानी! तूने उसको मारना चाहा! ॥ ५ ॥

दो०— सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पापी अंतकाल गति तोरि॥ ९ ॥

[बालिने कहा—] हे श्रीरामजी! सुनिये, स्वामी (आप) से मेरी चतुराई नहीं चल सकती। हे प्रभो! अन्तकालमें आपकी गति (शरण) पाकर मैं अब भी पापी ही रहा? ॥ १ ॥

सुनत राम अति कोमल बानी। बालि सीस परसेउ निज पानी॥
अचल करौं तनु राखहु प्राना। बालि कहा सुनु कृपानिधाना॥

बालिकी अत्यन्त कोमल वाणी सुनकर श्रीरामजीने उसके सिरको अपने हाथसे स्पर्श किया [और कहा—] मैं तुम्हारे शरीरको अचल कर दूँ, तुम प्राणोंको रखो। बालिने कहा—हे कृपानिधान! सुनिये— ॥ १ ॥

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥
जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहि सम गति अबिनासी॥

मुनिगण जन्म-जन्ममें (प्रत्येक जन्ममें) [अनेकों प्रकारका] साधन करते रहते हैं। फिर भी अन्तकालमें उन्हें 'राम' नहीं कह आता (उनके मुखसे रामनाम नहीं निकलता)। जिनके नामके बलसे शङ्करजी काशीमें सबको समानरूपसे अविनाशिनी गति (मुक्ति) देते हैं ॥ २ ॥

मम लोचन गोचर सोइ आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा॥

वह श्रीरामजी स्वयं मेरे नेत्रोंके सामने आ गये हैं। हे प्रभो! ऐसा संयोग क्या फिर कभी बन पड़ेगा?॥ ३॥

छं०— सो नयन गोचर जासु गुन नित नेति कहि श्रुति गावहीं।
जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं॥
मोहि जानि अति अभिमान बस प्रभु कहेउ राखु सरीरही।
अस कवन सठ हठि काटि सुरतरु बारि करिहि बबूरही॥

श्रुतियाँ 'नेति-नेति' कहकर निरन्तर जिनका गुणगान करती रहती हैं, तथा प्राण और मनको जीतकर एवं इन्द्रियोंको [विषयोंके रससे सर्वथा] नीरस बनाकर मुनिगण ध्यानमें जिनकी कभी क्वचित् ही झलक पाते हैं, वे ही प्रभु (आप) साक्षात् मेरे सामने प्रकट हैं। आपने मुझे अत्यन्त अभिमानवश जानकर यह कहा कि तुम शरीर रख लो। परन्तु ऐसा मूर्ख कौन होगा जो हठपूर्वक कल्पवृक्षको काटकर उससे बबूरके बाड़ लगावेगा (अर्थात् पूर्णकाम बना देनेवाले आपको छोड़कर आपसे इस नश्वर शरीरकी रक्षा चाहेगा?)॥ १॥

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर मागऊँ।
जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ॥
यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिऐ।
गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिऐ॥

हे नाथ! अब मुझपर दयादृष्टि कीजिये और मैं जो वर माँगता हूँ उसे दीजिये। मैं कर्मवश जिस योनिमें जन्म लूँ, वहीं श्रीरामजी (आप) के चरणोंमें प्रेम करूँ! हे कल्याणप्रद प्रभो! यह मेरा पुत्र अंगद विनय और बलमें मेरे ही समान है, इसे स्वीकार कीजिये। और हे देवता और मनुष्योंके नाथ! बाँह पकड़कर इसे अपना दास बनाइये॥ २॥

दो०— राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग॥ १०॥

श्रीरामजीके चरणोंमें दृढ़ प्रीति करके बालिने शरीरको वैसे ही (आसानीसे) त्याग दिया जैसे हाथी अपने गलेसे फूलोंकी मालाका गिरना न जाने॥ १०॥

राम बालि निज धाम पठावा। नगर लोग सब ब्याकुल धावा॥
नाना बिधि बिलाप कर तारा। छूटे केस न देह सँभारा॥

श्रीरामचन्द्रजीने बालिको अपने परम धाम भेज दिया। नगरके सब लोग व्याकुल होकर दौड़े। बालिकी स्त्री तारा अनेकों प्रकारसे विलाप करने लगी। उसके बाल बिखरे हुए हैं और देहकी सँभाल नहीं है॥ १॥

तारा बिकल देखि रघुराया। दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया॥
छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥

ताराको व्याकुल देखकर श्रीरघुनाथजीने उसे ज्ञान दिया और उसकी माया (अज्ञान) हर ली। [उन्होंने कहा—] पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु—इन पाँच तत्त्वोंसे यह अत्यन्त अधम शरीर रचा गया है॥ २॥

प्रगट सो तनु तव आगें सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥
उपजा ग्यान चरन तब लागी। लीन्हेसि परम भगति बर मागी॥

वह शरीर तो प्रत्यक्ष तुम्हारे सामने सोया हुआ है, और जीव नित्य है। फिर तुम किसके लिये रो रही हो? जब ज्ञान उत्पन्न हो गया, तब वह भगवान्‌के चरणों लगी और उसने परम भक्तिका वर माँग लिया॥ ३॥

उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत रामु गोसाईं॥
तब सुग्रीवहि आयसु दीन्हा। मृतक कर्म बिधिवत सब कीन्हा॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा! स्वामी श्रीरामजी सबको कठपुतलीकी तरह नचाते हैं। तदनन्तर श्रीरामजीने सुग्रीवको आज्ञा दी और सुग्रीवने विधिपूर्वक बालिका सब मृतक-कर्म किया॥ ४॥

राम कहा अनुजहि समुझाई। राज देहु सुग्रीवहि जाई॥
रघुपति चरन नाइ करि माथा। चले सकल प्रेरित रघुनाथा॥

तब श्रीरामचन्द्रजीने छोटे भाई लक्ष्मणको समझाकर कहा कि तुम जाकर सुग्रीवको राज्य दे दो। श्रीरघुनाथजीकी प्रेरणा (आज्ञा) से सब लोग श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें मस्तक नवाकर चले॥ ५॥

दो०— लछिमन तुरत बोलाए पुरजन बिप्र समाज।
राजु दीन्ह सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुबराज॥ ११॥

लक्ष्मणजीने तुरंत ही सब नगरनिवासियोंको और ब्राह्मणोंके समाजको बुला लिया और [उनके सामने] सुग्रीवको राज्य और अंगदको युवराज-पद दिया॥ ११॥

उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥
सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती॥

हे पार्वती! जगत्‌में श्रीरामजीके समान हित करनेवाला गुरु, पिता, माता, बन्धु और स्वामी कोई नहीं है। देवता, मनुष्य और मुनि सबकी यह रीति है कि स्वार्थके लिये ही सब प्रीति करते हैं॥ १॥

बालि त्रास ब्याकुल दिन राती। तन बहु ब्रन चिंताँ जर छाती॥
सोइ सुग्रीव कीन्ह कपिराऊ। अति कृपाल रघुबीर सुभाऊ॥

जो सुग्रीव दिन-रात बालिके भयसे व्याकुल रहता था, जिसके शरीरमें बहुत-

से घाव हो गये थे और जिसकी छाती चिन्ताके मारे जला करती थी, उसी सुग्रीवको उन्होंने वानरोंका राजा बना दिया। श्रीरामचन्द्रजीका स्वभाव अत्यन्त ही कृपालु है॥ २॥

जानतहूँ अस प्रभु परिहरहीं। काहे न बिपति जाल नर परहीं॥
पुनि सुग्रीवहि लीन्ह बोलाई। बहु प्रकार नृपनीति सिखाई॥

जो लोग जानते हुए भी ऐसे प्रभुको त्याग देते हैं, वे क्यों न विपत्तिके जालमें फँसें? फिर श्रीरामजीने सुग्रीवको बुला लिया और बहुत प्रकारसे उन्हें राजनीतिकी शिक्षा दी॥ ३॥

कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीसा। पुर न जाउँ दस चारि बरीसा॥
गत ग्रीषम बरषा रितु आई। रहिहउँ निकट सैल पर छाई॥

फिर प्रभुने कहा—हे वानरपति सुग्रीव! सुनो, मैं चौदह वर्षतक गाँव (बस्ती) में नहीं जाऊँगा। ग्रीष्म-ऋतु बीतकर वर्षा-ऋतु आ गयी। अतः मैं यहाँ पास ही पर्वतपर टिक रहूँगा॥ ४॥

अंगद सहित करहु तुम्ह राजू। संतत हृदयँ धरेहु मम काजू॥
जब सुग्रीव भवन फिरि आए। रामु प्रबरषन गिरि पर छाए॥

तुम अंगदसहित राज्य करो। मेरे कामका हृदयमें सदा ध्यान रखना। तदनन्तर जब सुग्रीवजी घर लौट आये, तब श्रीरामजी प्रवर्षण पर्वतपर जा टिके॥ ५॥

दो०— प्रथमहिं देवन्ह गिरि गुहा राखेउ रुचिर बनाइ।
राम कृपानिधि कछु दिन बास करहिंगे आइ॥ १२॥

देवताओंने पहलेसे ही उस पर्वतकी एक गुफाको सुन्दर बना (सजा) रखा था। उन्होंने सोच रखा था कि कृपाकी खान श्रीरामजी कुछ दिन यहाँ आकर निवास करेंगे॥ १२॥

सुंदर बन कुसुमित अति सोभा। गुंजत मधुप निकर मधु लोभा॥
कंद मूल फल पत्र सुहाए। भए बहुत जब ते प्रभु आए॥

सुन्दर वन फूला हुआ अत्यन्त सुशोभित है। मधुके लोभसे भौंरोंके समूह गुंजार कर रहे हैं। जबसे प्रभु आये, तबसे वनमें सुन्दर कन्द, मूल, फल और पत्तोंकी बहुतायत हो गयी॥ १॥

देखि मनोहर सैल अनूपा। रहे तहँ अनुज सहित सुरभूपा॥
मधुकर खग मृग तनु धरि देवा। करहिं सिद्ध मुनि प्रभु कै सेवा॥

मनोहर और अनुपम पर्वतको देखकर देवताओंके सम्राट् श्रीरामजी छोटे भाईसहित वहाँ रह गये। देवता, सिद्ध और मुनि भौंरों, पक्षियों और पशुओंके शरीर धारण करके प्रभुकी सेवा करने लगे॥ २॥

मंगलरूप भयउ बन तब ते। कीन्ह निवास रमापति जब ते॥
फटिक सिला अति सुभ्र सुहाई। सुख आसीन तहाँ द्वौ भाई॥

जबसे रमापति श्रीरामजीने वहाँ निवास किया तबसे वन मङ्गलस्वरूप हो गया। सुन्दर स्फटिकमणिकी एक अत्यन्त उज्ज्वल शिला है, उसपर दोनों भाई सुखपूर्वक विराजमान हैं॥ ३॥

कहत अनुज सन कथा अनेका। भगति बिरति नृपनीति बिबेका॥
बरषा काल मेघ नभ छाए। गरजत लागत परम सुहाए॥

श्रीरामजी छोटे भाई लक्ष्मणजीसे भक्ति, वैराग्य, राजनीति और ज्ञानकी अनेकों कथाएँ कहते हैं। वर्षाकालमें आकाशमें छाये हुए बादल गरजते हुए बहुत ही सुहावने लगते हैं॥ ४॥

दो०— लछिमन देखु मोर गन नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरति रत हरष जस बिष्नुभगत कहुँ देखि॥ १३॥

[श्रीरामजी कहने लगे—] हे लक्ष्मण! देखो, मोरोंके झुंड बादलोंको देखकर नाच रहे हैं। जैसे वैराग्यमें अनुरक्त गृहस्थ किसी विष्णुभक्तको देखकर हर्षित होते हैं॥ १३॥

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा॥
दामिनि दमक रह न घन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं॥

आकाशमें बादल घुमड़-घुमड़कर घोर गर्जना कर रहे हैं, प्रिया (सीताजी) के बिना मेरा मन डर रहा है। बिजलीकी चमक बादलोंमें ठहरती नहीं, जैसे दुष्टकी प्रीति स्थिर नहीं रहती॥ १॥

बरषहिं जलद भूमि निअराएँ। जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ॥
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें। खल के बचन संत सह जैसें॥

बादल पृथ्वीके समीप आकर (नीचे उतरकर) बरस रहे हैं, जैसे विद्या पाकर विद्वान् नम्र हो जाते हैं। बूँदोंकी चोट पर्वत कैसे सहते हैं, जैसे दुष्टोंके वचन संत सहते हैं॥ २॥

छुद्र नदीं भरि चलीं तोराई। जस थोरेहुँ धन खल इतराई॥
भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहि माया लपटानी॥

छोटी नदियाँ भरकर [किनारोंको] तुड़ाती हुई चलीं, जैसे थोड़े धनसे भी दुष्ट इतरा जाते हैं (मर्यादाका त्याग कर देते हैं)। पृथ्वीपर पड़ते ही पानी गँदला हो गया है, जैसे शुद्ध जीवके माया लिपट गयी हो॥ ३॥

समिटि समिटि जल भरहिं तलावा। जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा॥
सरिता जल जलनिधि महुँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई॥

जल एकत्र हो-होकर तालाबोंमें भर रहा है, जैसे सद्गुण [एक-एककर] सज्जनके पास चले आते हैं। नदीका जल समुद्रमें जाकर वैसे ही स्थिर हो जाता है, जैसे जीव श्रीहरिको पाकर अचल (आवागमनसे मुक्त) हो जाता है॥ ४॥

दो०— हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाखंड बाद तें गुप्त होहिं सदग्रंथ॥ १४॥

पृथ्वी घाससे परिपूर्ण होकर हरी हो गयी है, जिससे रास्ते समझ नहीं पड़ते। जैसे पाखण्ड-मतके प्रचारसे सद्ग्रन्थ गुप्त (लुप्त) हो जाते हैं॥ १४॥

दादुर धुनि चहु दिसा सुहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई॥
नव पल्लव भए बिटप अनेका। साधक मन जस मिलें बिबेका॥

चारों दिशाओंमें मेढकोंकी ध्वनि ऐसी सुहावनी लगती है, मानो विद्यार्थियोंके समुदाय वेद पढ़ रहे हों। अनेकों वृक्षोंमें नये पत्ते आ गये हैं, जिससे वे ऐसे हरे-भरे एवं सुशोभित हो गये हैं जैसे साधकका मन विवेक (ज्ञान) प्राप्त होनेपर हो जाता है॥ १॥

अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ॥
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धरमहि दूरी॥

मदार और जवासा बिना पत्तेके हो गये (उनके पत्ते झड़ गये)। जैसे श्रेष्ठ राज्यमें दुष्टोंका उद्यम जाता रहा (उनकी एक भी नहीं चलती)। धूल कहीं खोजनेपर भी नहीं मिलती, जैसे क्रोध धर्मको दूर कर देता है (अर्थात् क्रोधका आवेश होनेपर धर्मका ज्ञान नहीं रह जाता)॥ २॥

ससि संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै संपति जैसी॥
निसि तम घन खद्योत बिराजा। जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा॥

अन्नसे युक्त (लहलहाती हुई खेतीसे हरी-भरी) पृथ्वी कैसी शोभित हो रही है, जैसी उपकारी पुरुषकी सम्पत्ति। रातके घने अन्धकारमें जुगनू शोभा पा रहे हैं, मानो दम्भियोंका समाज आ जुटा हो॥ ३॥

महाबृष्टि चलि फूटि किआरीं। जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारीं॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना॥

भारी वर्षासे खेतोंकी क्यारियाँ फूट चली हैं, जैसे स्वतन्त्र होनेसे स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं। चतुर किसान खेतोंको निरा रहे हैं (उनमेंसे घास आदिको निकालकर फेंक रहे हैं)। जैसे विद्वान् लोग मोह, मद और मानका त्याग कर देते हैं॥ ४॥

देखिअत चक्रबाक खग नाहीं। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं॥
ऊषर बरषइ तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हियँ उपज न कामा॥

चक्रवाक पक्षी दिखायी नहीं दे रहे हैं; जैसे कलियुगको पाकर धर्म भाग जाते हैं। ऊसरमें वर्षा होती है, पर वहाँ घासतक नहीं उगती। जैसे हरिभक्तके हृदयमें काम नहीं उत्पन्न होता॥ ५॥

बिबिध जंतु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा॥
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इंद्रिय गन उपजें ग्याना॥

पृथ्वी अनेक तरहके जीवोंसे भरी हुई उसी तरह शोभायमान है, जैसे सुराज्य पाकर प्रजाकी वृद्धि होती है। जहाँ-तहाँ अनेक पथिक थककर ठहरे हुए हैं, जैसे ज्ञान उत्पन्न होनेपर इन्द्रियाँ [शिथिल होकर विषयोंकी ओर जाना छोड़ देती हैं] ॥ ६ ॥

दो०— कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के उपजें कुल सद्धर्म नसाहिं॥ १५ (क)॥

कभी-कभी वायु बड़े जोरसे चलने लगती है, जिससे बादल जहाँ-तहाँ गायब हो जाते हैं। जैसे कुपुत्रके उत्पन्न होनेसे कुलके उत्तम धर्म (श्रेष्ठ आचरण) नष्ट हो जाते हैं॥ १५ (क) ॥

कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग॥ १५ (ख)॥

कभी [बादलोंके कारण] दिनमें घोर अन्धकार छा जाता है और कभी सूर्य प्रकट हो जाते हैं। जैसे कुसंग पाकर ज्ञान नष्ट हो जाता है और सुसंग पाकर उत्पन्न हो जाता है॥ १५ (ख) ॥

बरषा बिगत सरद रितु आई। लछिमन देखहु परम सुहाई॥
फूलें कास सकल महि छाई। जनु बरषाँ कृत प्रगट बुढ़ाई॥

हे लक्ष्मण! देखो, वर्षा बीत गयी और परम सुन्दर शरद्-ऋतु आ गयी। फूले हुए काससे सारी पृथ्वी छा गयी। मानो वर्षा-ऋतुने [कासरूपी सफेद बालोंके रूपमें] अपना बुढ़ापा प्रकट किया है॥ १ ॥

उदित अगस्ति पंथ जल सोषा। जिमि लोभहि सोषइ संतोषा॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥

अगस्त्यके तारेने उदय होकर मार्गके जलको सोख लिया, जैसे सन्तोष लोभको सोख लेता है। नदियों और तालाबोंका निर्मल जल ऐसी शोभा पा रहा है जैसे मद और मोहसे रहित संतोंका हृदय!॥ २ ॥

रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी॥
जानि सरद रितु खंजन आए। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए॥

नदी और तालाबोंका जल धीरे-धीरे सूख रहा है। जैसे ज्ञानी (विवेकी) पुरुष ममताका त्याग करते हैं। शरद्-ऋतु जानकर खंजन पक्षी आ गये। जैसे समय पाकर सुन्दर सुकृत आ जाते हैं (पुण्य प्रकट हो जाते हैं) ॥ ३ ॥

पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुन नृप कै जसि करनी॥
जल संकोच बिकल भइँ मीना। अबुध कुटुंबी जिमि धनहीना॥

न कीचड़ है न धूल; इससे धरती [निर्मल होकर] ऐसी शोभा दे रही है जैसे नीतिनिपुण राजाकी करनी! जलके कम हो जानेसे मछलियाँ व्याकुल हो रही हैं,

जैसे मूर्ख (विवेकशून्य) कुटुम्बी (गृहस्थ) धनके बिना व्याकुल होता है॥ ४॥

बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा॥
कहुँ कहुँ बृष्टि सारदी थोरी। कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी॥

बिना बादलोंका निर्मल आकाश ऐसा शोभित हो रहा है जैसे भगवद्भक्त सब आशाओंको छोड़कर सुशोभित होते हैं। कहीं-कहीं (विरले ही स्थानोंमें) शरद्-ऋतुकी थोड़ी-थोड़ी वर्षा हो रही है। जैसे कोई विरले ही मेरी भक्ति पाते हैं॥ ५॥

दो०— चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरिभगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि॥ १६॥

[शरद्-ऋतु पाकर] राजा, तपस्वी, व्यापारी और भिखारी [क्रमशः विजय, तप, व्यापार और भिक्षाके लिये] हर्षित होकर नगर छोड़कर चले। जैसे श्रीहरिकी भक्ति पाकर चारों आश्रमवाले [नाना प्रकारके साधनरूपी] श्रमोंको त्याग देते हैं॥ १६॥

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकउ बाधा॥
फूलें कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा॥

जो मछलियाँ अथाह जलमें हैं, वे सुखी हैं, जैसे श्रीहरिके शरणमें चले जानेपर एक भी बाधा नहीं रहती। कमलोंके फूलनेसे तालाब कैसी शोभा दे रहा है, जैसे निर्गुण ब्रह्म सगुण होनेपर शोभित होता है॥ १॥

गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुंदर खग रव नाना रूपा॥
चक्रबाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुर्जन पर संपति देखी॥

भौंरे अनुपम शब्द करते हुए गूँज रहे हैं, तथा पक्षियोंके नाना प्रकारके सुन्दर शब्द हो रहे हैं। रात्रि देखकर चकवेके मनमें वैसे ही दुःख हो रहा है, जैसे दूसरेकी सम्पत्ति देखकर दुष्टको होता है॥ २॥

चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न संकरद्रोही॥
सरदातप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई॥

पपीहा रट लगाये है, उसको बड़ी प्यास है, जैसे श्रीशङ्करजीका द्रोही सुख नहीं पाता (सुखके लिये झीखता रहता है)। शरद्-ऋतुके तापको रातके समय चन्द्रमा हर लेता है, जैसे संतोंके दर्शनसे पाप दूर हो जाते हैं॥ ३॥

देखि इंदु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई॥
मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किएँ कुल नासा॥

चकोरोंके समुदाय चन्द्रमाको देखकर इस प्रकार टकटकी लगाये हैं जैसे भगवद्भक्त भगवान्‌को पाकर उनके [निर्निमेष नेत्रोंसे] दर्शन करते हैं। मच्छर और डाँस जाड़ेके डरसे इस प्रकार नष्ट हो गये जैसे ब्राह्मणके साथ वैर करनेसे कुलका नाश हो जाता है॥ ४॥

दो०— **भूमि जीव संकुल रहे गए सरद रितु पाइ।**
सदगुर मिलें जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ॥ १७॥

[वर्षा-ऋतुके कारण] पृथ्वीपर जो जीव भर गये थे, वे शरद्-ऋतुको पाकर वैसे ही नष्ट हो गये जैसे सद्गुरुके मिल जानेपर सन्देह और भ्रमके समूह नष्ट हो जाते हैं॥ १७॥

बरषा गत निर्मल रितु आई। सुधि न तात सीता कै पाई॥
एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं। कालहु जीति निमिष महुँ आनौं॥

वर्षा बीत गयी, निर्मल शरद्-ऋतु आ गयी। परन्तु हे तात! सीताकी कोई खबर नहीं मिली। एक बार कैसे भी पता पाऊँ तो कालको भी जीतकर पलभरमें जानकीको ले आऊँ॥ १॥

कतहुँ रहउ जौं जीवति होई। तात जतन करि आनउँ सोई॥
सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोस पुर नारी॥

कहीं भी रहे, यदि जीती होगी तो हे तात! यत्न करके मैं उसे अवश्य लाऊँगा। राज्य, खजाना, नगर और स्त्री पा गया, इसलिये सुग्रीवने भी मेरी सुधि भुला दी॥ २॥

जेहिं सायक मारा मैं बाली। तेहिं सर हतौं मूढ़ कहँ काली॥
जासु कृपाँ छूटहिं मद मोहा। ता कहुँ उमा कि सपनेहुँ कोहा॥

जिस बाणसे मैंने बालिको मारा था, उसी बाणसे कल उस मूढ़को मारूँ! [शिवजी कहते हैं—] हे उमा! जिनकी कृपासे मद और मोह छूट जाते हैं, उनको कहीं स्वप्नमें भी क्रोध हो सकता है? [यह तो लीलामात्र है]॥ ३॥

जानहिं यह चरित्र मुनि ग्यानी। जिन्ह रघुबीर चरन रति मानी॥
लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना। धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना॥

ज्ञानी मुनि जिन्होंने श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें प्रीति मान ली है (जोड़ ली है), वे ही इस चरित्र (लीलारहस्य) को जानते हैं। लक्ष्मणजीने जब प्रभुको क्रोधयुक्त जाना, तब उन्होंने धनुष चढ़ाकर बाण हाथमें ले लिये॥ ४॥

दो०— **तब अनुजहि समुझावा रघुपति करुना सींव।**
भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव॥ १८॥

तब दयाकी सीमा श्रीरघुनाथजीने छोटे भाई लक्ष्मणजीको समझाया कि हे तात! सखा सुग्रीवको केवल भय दिखलाकर ले आओ [उसे मारनेकी बात नहीं है]॥ १८॥

इहाँ पवनसुत हृदयँ बिचारा। राम काजु सुग्रीवँ बिसारा॥
निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा॥

यहाँ (किष्किन्धानगरीमें) पवनकुमार श्रीहनुमान्‌जीने विचार किया कि सुग्रीवने श्रीरामजीके कार्यको भुला दिया। उन्होंने सुग्रीवके पास जाकर चरणोंमें सिर नवाया।

[साम, दान, दण्ड, भेद] चारों प्रकारकी नीति कहकर उन्हें समझाया॥ १॥

सुनि सुग्रीवँ परम भय माना। बिषयँ मोर हरि लीन्हेउ ग्याना॥
अब मारुतसुत दूत समूहा। पठवहु जहँ तहँ बानर जूहा॥

हनुमान्‌जीके वचन सुनकर सुग्रीवने बहुत ही भय माना। [और कहा—] विषयोंने मेरे ज्ञानको हर लिया। अब हे पवनसुत! जहाँ-तहाँ वानरोंके यूथ रहते हैं; वहाँ दूतोंके समूहोंको भेजो॥ २॥

कहहु पाख महुँ आव न जोई। मोरें कर ता कर बध होई॥
तब हनुमंत बोलाए दूता। सब कर करि सनमान बहूता॥

और कहला दो कि एक पखवाड़ेमें (पंद्रह दिनोंमें) जो न आ जायगा, उसका मेरे हाथों वध होगा। तब हनुमान्‌जीने दूतोंको बुलाया और सबका बहुत सम्मान करके—॥ ३॥

भय अरु प्रीति नीति देखराई। चले सकल चरनन्हि सिर नाई॥
एहि अवसर लछिमन पुर आए। क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाए॥

सबको भय, प्रीति और नीति दिखलायी। सब बंदर चरणोंमें सिर नवाकर चले। इसी समय लक्ष्मणजी नगरमें आये। उनका क्रोध देखकर बंदर जहाँ-तहाँ भागे॥ ४॥

दो०— धनुष चढ़ाइ कहा तब जारि करउँ पुर छार।
ब्याकुल नगर देखि तब आयउ बालिकुमार॥ १९॥

तदनन्तर लक्ष्मणजीने धनुष चढ़ाकर कहा कि नगरको जलाकर अभी राख कर दूँगा। तब नगरभरको व्याकुल देखकर बालिपुत्र अंगदजी उनके पास आये॥ १९॥

चरन नाइ सिरु बिनती कीन्ही। लछिमन अभय बाँह तेहि दीन्ही॥
क्रोधवंत लछिमन सुनि काना। कह कपीस अति भयँ अकुलाना॥

अंगदने उनके चरणोंमें सिर नवाकर विनती की (क्षमायाचना की)। तब लक्ष्मणजीने उनको अभय बाँह दी (भुजा उठाकर कहा कि डरो मत)। सुग्रीवने अपने कानोंसे लक्ष्मणजीको क्रोधयुक्त सुनकर भयसे अत्यन्त व्याकुल होकर कहा—॥ १॥

सुनु हनुमंत संग लै तारा। करि बिनती समुझाउ कुमारा॥
तारा सहित जाइ हनुमाना। चरन बंदि प्रभु सुजस बखाना॥

हे हनुमान्! सुनो, तुम ताराको साथ ले जाकर विनती करके राजकुमारको समझाओ (समझा-बुझाकर शान्त करो)। हनुमान्‌जीने तारासहित जाकर लक्ष्मणजीके चरणोंकी वन्दना की और प्रभुके सुन्दर यशका बखान किया॥ २॥

करि बिनती मंदिर लै आए। चरन पखारि पलँग बैठाए॥
तब कपीस चरननन्हि सिरु नावा। गहि भुज लछिमन कंठ लगावा॥

वे विनती करके उन्हें महलमें ले आये तथा चरणोंको धोकर उन्हें पलँगपर बैठाया। तब वानरराज सुग्रीवने उनके चरणोंमें सिर नवाया और लक्ष्मणजीने हाथ पकड़कर उनको गलेसे लगा लिया॥ ३॥

नाथ बिषय सम मद कछु नाहीं। मुनि मन मोह करइ छन माहीं॥
सुनत बिनीत बचन सुख पावा। लछिमन तेहि बहुबिधि समुझावा॥

[सुग्रीवने कहा—] हे नाथ! विषयके समान और कोई मद नहीं है। यह मुनियोंके मनमें भी क्षणमात्रमें मोह उत्पन्न कर देता है [फिर मैं तो विषयी जीव ही ठहरा]। सुग्रीवके विनययुक्त वचन सुनकर लक्ष्मणजीने सुख पाया और उनको बहुत प्रकारसे समझाया॥ ४॥

पवन तनय सब कथा सुनाई। जेहि बिधि गए दूत समुदाई॥

तब पवनसुत हनुमान्‌जीने जिस प्रकार सब दिशाओंमें दूतोंके समूह गये थे वह सब हाल सुनाया॥ ५॥

दो०— हरषि चले सुग्रीव तब अंगदादि कपि साथ।
रामानुज आगें करि आए जहँ रघुनाथ॥ २०॥

तब अंगद आदि वानरोंको साथ लेकर और श्रीरामजीके छोटे भाई लक्ष्मणजीको आगे करके (अर्थात् उनके पीछे-पीछे) सुग्रीव हर्षित होकर चले और जहाँ रघुनाथजी थे वहाँ आये॥ २०॥

नाइ चरन सिरु कह कर जोरी। नाथ मोहि कछु नाहिन खोरी॥
अतिसय प्रबल देव तव माया। छूटइ राम करहु जौं दाया॥

श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें सिर नवाकर हाथ जोड़कर सुग्रीवने कहा—हे नाथ! मुझे कुछ भी दोष नहीं है। हे देव! आपकी माया अत्यन्त ही प्रबल है। आप जब दया करते हैं, हे राम! तभी यह छूटती है॥ १॥

बिषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी। मैं पावँर पसु कपि अति कामी॥
नारि नयन सर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निसि जो जागा॥

हे स्वामी! देवता, मनुष्य और मुनि सभी विषयोंके वशमें हैं। फिर मैं तो पामर पशु और पशुओंमें भी अत्यन्त कामी बंदर हूँ। स्त्रीका नयन-बाण जिसको नहीं लगा, जो भयङ्कर क्रोधरूपी अँधेरी रातमें भी जागता रहता है (क्रोधान्ध नहीं होता)॥ २॥

लोभ पाँस जेहिं गर न बँधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया॥
यह गुन साधन तें नहिं होई। तुम्हरी कृपाँ पाव कोइ कोई॥

और लोभकी फाँसीसे जिसने अपना गला नहीं बँधाया, हे रघुनाथजी! वह मनुष्य आपहीके समान है। ये गुण साधनसे नहीं प्राप्त होते। आपकी कृपासे ही कोई-कोई इन्हें पाते हैं॥ ३॥

तब रघुपति बोले मुसुकाई। तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई॥
अब सोइ जतनु करहु मन लाई। जेहि बिधि सीता कै सुधि पाई॥

तब श्रीरघुनाथजी मुसकराकर बोले—हे भाई! तुम मुझे भरतके समान प्यारे हो। अब मन लगाकर वही उपाय करो जिस उपायसे सीताकी खबर मिले॥ ४॥

दो०— एहि बिधि होत बतकही आए बानर जूथ।
नाना बरन सकल दिसि देखिअ कीस बरूथ॥ २१॥

इस प्रकार बातचीत हो रही थी कि वानरोंके यूथ (झुंड) आ गये। अनेक रंगोंके वानरोंके दल सब दिशाओंमें दिखायी देने लगे॥ २१॥

बानर कटक उमा मैं देखा। सो मूरुख जो करन चह लेखा॥
आइ राम पद नावहिं माथा। निरखि बदनु सब होहिं सनाथा॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा! वानरोंकी वह सेना मैंने देखी थी। उसकी जो गिनती करना चाहे वह महान् मूर्ख है। सब वानर आ-आकर श्रीरामजीके चरणोंमें मस्तक नवाते हैं और [सौन्दर्य-माधुर्यनिधि] श्रीमुखके दर्शन करके कृतार्थ होते हैं॥ १॥

अस कपि एक न सेना माहीं। राम कुसल जेहि पूछी नाहीं॥
यह कछु नहिं प्रभु कइ अधिकाई। बिस्वरूप ब्यापक रघुराई॥

सेनामें एक भी वानर ऐसा नहीं था जिससे श्रीरामजीने कुशल न पूछी हो। प्रभुके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है; क्योंकि श्रीरघुनाथजी विश्वरूप तथा सर्वव्यापक हैं (सारे रूपों और सब स्थानोंमें हैं)॥ २॥

ठाढ़े जहँ तहँ आयसु पाई। कह सुग्रीव सबहि समुझाई॥
राम काजु अरु मोर निहोरा। बानर जूथ जाहु चहुँ ओरा॥

आज्ञा पाकर सब जहाँ-तहाँ खड़े हो गये। तब सुग्रीवने सबको समझाकर कहा कि हे वानरोंके समूहो! यह श्रीरामचन्द्रजीका कार्य है और मेरा निहोरा (अनुरोध) है; तुम चारों ओर जाओ॥ ३॥

जनकसुता कहुँ खोजहु जाई। मास दिवस महँ आएहु भाई॥
अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाएँ। आवइ बनिहि सो मोहि मराएँ॥

और जाकर जानकीजीको खोजो। हे भाई! महीनेभरमें वापस आ जाना। जो [महीनेभरकी] अवधि बिताकर बिना पता लगाये ही लौट आवेगा उसे मेरे द्वारा मरवाते ही बनेगा (अर्थात् मुझे उसका वध करवाना ही पड़ेगा)॥ ४॥

दो०— बचन सुनत सब बानर जहँ तहँ चले तुरंत।
तब सुग्रीवँ बोलाए अंगद नल हनुमंत॥ २२॥

सुग्रीवके वचन सुनते ही सब वानर तुरंत जहाँ-तहाँ (भिन्न-भिन्न दिशाओंमें)

चल दिये। तब सुग्रीवने अंगद, नल, हनुमान् आदि प्रधान-प्रधान योद्धाओंको बुलाया [और कहा—] ॥ २२ ॥

सुनहु नील अंगद हनुमाना। जामवंत मतिधीर सुजाना॥
सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू। सीता सुधि पूँछेहु सब काहू॥

हे धीरबुद्धि और चतुर नील, अंगद, जाम्बवान् और हनुमान्! तुम सब श्रेष्ठ योद्धा मिलकर दक्षिण दिशाको जाओ और सब किसीसे सीताजीका पता पूछना॥ १ ॥

मन क्रम बचन सो जतन बिचारेहु। रामचंद्र कर काजु सँवारेहु॥
भानु पीठि सेइअ उर आगी। स्वामिहि सर्ब भाव छल त्यागी॥

मन, वचन तथा कर्मसे उसीका (सीताजीका पता लगानेका) उपाय सोचना। श्रीरामचन्द्रजीका कार्य सम्पन्न (सफल) करना। सूर्यको पीठसे और अग्निको हृदयसे (सामनेसे) सेवन करना चाहिये। परन्तु स्वामीकी सेवा तो छल छोड़कर सर्वभावसे (मन, वचन, कर्मसे) करनी चाहिये॥ २ ॥

तजि माया सेइअ परलोका। मिटहिं सकल भवसंभव सोका॥
देह धरें कर यह फलु भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई॥

माया (विषयोंकी ममता-आसक्ति) को छोड़कर परलोकका सेवन (भगवान्‌के दिव्य धामकी प्राप्तिके लिये भगवत्सेवारूप साधन) करना चाहिये, जिससे भव (जन्म-मरण) से उत्पन्न सारे शोक मिट जायँ। हे भाई! देह धारण करनेका यही फल है कि सब कामों (कामनाओं) को छोड़कर श्रीरामजीका भजन ही किया जाय॥ ३ ॥

सोइ गुनग्य सोई बड़भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी॥
आयसु मागि चरन सिरु नाई। चले हरषि सुमिरत रघुराई॥

सद्गुणोंको पहचाननेवाला (गुणवान्) तथा बड़भागी वही है जो श्रीरघुनाथजीके चरणोंका प्रेमी है। आज्ञा माँगकर और चरणोंमें फिर सिर नवाकर श्रीरघुनाथजीका स्मरण करते हुए सब हर्षित होकर चले॥ ४ ॥

पाछें पवन तनय सिरु नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा॥
परसा सीस सरोरुह पानी। करमुद्रिका दीन्हि जन जानी॥

सबके पीछे पवनसुत श्रीहनुमान्‌जीने सिर नवाया। कार्यका विचार करके प्रभुने उन्हें अपने पास बुलाया। उन्होंने अपने कर-कमलसे उनके सिरका स्पर्श किया तथा अपना सेवक जानकर उन्हें अपने हाथकी अँगूठी उतारकर दी॥ ५ ॥

बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु॥
हनुमत जन्म सुफल करि माना। चलेउ हृदयँ धरि कृपानिधाना॥

[और कहा—] बहुत प्रकारसे सीताको समझाना और मेरा बल तथा विरह (प्रेम) कहकर तुम शीघ्र लौट आना। हनुमान्‌जीने अपना जन्म सफल समझा और कृपानिधान प्रभुको हृदयमें धारण करके वे चले॥ ६ ॥

जद्यपि प्रभु जानत सब बाता। राजनीति राखत सुरत्राता॥

यद्यपि देवताओंकी रक्षा करनेवाले प्रभु सब बात जानते हैं, तो भी वे राजनीतिकी रक्षा कर रहे हैं। (नीतिकी मर्यादा रखनेके लिये सीताजीका पता लगानेको जहाँ-तहाँ वानरोंको भेज रहे हैं) ॥ ७ ॥

दो०— चले सकल बन खोजत सरिता सर गिरि खोह।
राम काज लयलीन मन बिसरा तन कर छोह॥ २३॥

सब वानर वन, नदी, तालाब, पर्वत और पर्वतोंकी कन्दराओंमें खोजते हुए चले जा रहे हैं। मन श्रीरामजीके कार्यमें लवलीन है। शरीरतकका प्रेम (ममत्व) भूल गया है॥ २३॥

कतहुँ होइ निसिचर सैं भेटा। प्रान लेहिं एक एक चपेटा॥
बहु प्रकार गिरि कानन हेरहिं। कोउ मुनि मिलइ ताहि सब घेरहिं॥

कहीं किसी राक्षससे भेंट हो जाती है, तो एक-एक चपतमें ही उसके प्राण ले लेते हैं। पर्वतों और वनोंको बहुत प्रकारसे खोज रहे हैं। कोई मुनि मिल जाता है तो पता पूछनेके लिये उसे सब घेर लेते हैं॥ १ ॥

लागि तृषा अतिसय अकुलाने। मिलइ न जल घन गहन भुलाने॥
मन हनुमान कीन्ह अनुमाना। मरन चहत सब बिनु जल पाना॥

इतनेमें ही सबको अत्यन्त प्यास लगी, जिससे सब अत्यन्त ही व्याकुल हो गये। किन्तु जल कहीं नहीं मिला। घने जंगलमें सब भुला गये। हनुमान्‌जीने मनमें अनुमान किया कि जल पिये बिना सब लोग मरना ही चाहते हैं॥ २॥

चढ़ि गिरि सिखर चहूँ दिसि देखा। भूमि बिबर एक कौतुक पेखा॥
चक्रबाक बक हंस उड़ाहीं। बहुतक खग प्रबिसहिं तेहि माहीं॥

उन्होंने पहाड़की चोटीपर चढ़कर चारों ओर देखा तो पृथ्वीके अंदर एक गुफामें उन्हें एक कौतुक (आश्चर्य) दिखायी दिया। उसके ऊपर चकवे, बगुले और हंस उड़ रहे हैं और बहुत-से पक्षी उसमें प्रवेश कर रहे हैं॥ ३॥

गिरि ते उतरि पवनसुत आवा। सब कहुँ लै सोइ बिबर देखावा॥
आगें कै हनुमंतहि लीन्हा। पैठे बिबर बिलंबु न कीन्हा॥

पवनकुमार हनुमान्‌जी पर्वतसे उतर आये और सबको ले जाकर उन्होंने वह गुफा दिखलायी। सबने हनुमान्‌जीको आगे कर लिया और वे गुफामें घुस गये, देर नहीं की॥ ४॥

दो०— दीख जाइ उपबन बर सर बिगसित बहु कंज।
मंदिर एक रुचिर तहँ बैठि नारि तप पुंज॥ २४॥

अंदर जाकर उन्होंने एक उत्तम उपवन (बगीचा) और तालाब देखा, जिसमें बहुत-से कमल खिले हुए हैं। वहीं एक सुन्दर मन्दिर है, जिसमें एक तपोमूर्ति स्त्री बैठी है॥ २४॥

दूरि ते ताहि सबन्हि सिरु नावा। पूछें निज बृत्तांत सुनावा॥
तेहिं तब कहा करहु जल पाना। खाहु सुरस सुंदर फल नाना॥

दूरसे ही सबने उसे सिर नवाया और पूछनेपर अपना सब वृत्तान्त कह सुनाया। तब उसने कहा—जलपान करो और भाँति-भाँतिके रसीले सुन्दर फल खाओ॥ १॥

मज्जनु कीन्ह मधुर फल खाए। तासु निकट पुनि सब चलि आए॥
तेहिं सब आपनि कथा सुनाई। मैं अब जाब जहाँ रघुराई॥

[आज्ञा पाकर] सबने स्नान किया, मीठे फल खाये और फिर सब उसके पास चले आये। तब उसने अपनी सब कथा कह सुनायी [और कहा—] मैं अब वहाँ जाऊँगी जहाँ श्रीरघुनाथजी हैं॥ २॥

मूदहु नयन बिबर तजि जाहू। पैहहु सीतहि जनि पछिताहू॥
नयन मूदि पुनि देखहिं बीरा। ठाढ़े सकल सिंधु कें तीरा॥

तुमलोग आँखें मूँद लो और गुफाको छोड़कर बाहर जाओ। तुम सीताजीको पा जाओगे, पछताओ नहीं (निराश न होओ)। आँखें मूँदकर फिर जब आँखें खोलीं तो सब वीर क्या देखते हैं कि सब समुद्रके तीरपर खड़े हैं॥ ३॥

सो पुनि गई जहाँ रघुनाथा। जाइ कमल पद नाएसि माथा॥
नाना भाँति बिनय तेहिं कीन्ही। अनपायनी भगति प्रभु दीन्ही॥

और वह स्वयं वहाँ गयी जहाँ श्रीरघुनाथजी थे। उसने जाकर प्रभुके चरणकमलोंमें मस्तक नवाया और बहुत प्रकारसे विनती की। प्रभुने उसे अपनी अनपायिनी (अचल) भक्ति दी॥ ४॥

दो०— बदरीबन कहुँ सो गई प्रभु अग्या धरि सीस।
उर धरि राम चरन जुग जे बंदत अज ईस॥ २५॥

प्रभुकी आज्ञा सिरपर धारणकर और श्रीरामजीके युगल चरणोंको, जिनकी ब्रह्मा और महेश भी वन्दना करते हैं, हृदयमें धारणकर वह (स्वयंप्रभा) बदरिकाश्रमको चली गयी॥ २५॥

इहाँ बिचारहिं कपि मन माहीं। बीती अवधि काज कछु नाहीं॥
सब मिलि कहहिं परस्पर बाता। बिनु सुधि लएँ करब का भ्राता॥

यहाँ वानरगण मनमें विचार कर रहे हैं कि अवधि तो बीत गयी; पर काम कुछ न हुआ। सब मिलकर आपसमें बात करने लगे कि हे भाई! अब तो सीताजीकी खबर लिये बिना लौटकर भी क्या करेंगे?॥ १॥

कह अंगद लोचन भरि बारी। दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी॥
इहाँ न सुधि सीता कै पाई। उहाँ गएँ मारिहि कपिराई॥

अंगदने नेत्रोंमें जल भरकर कहा कि दोनों ही प्रकारसे हमारी मृत्यु हुई। यहाँ

तो सीताजीकी सुध नहीं मिली और वहाँ जानेपर वानरराज सुग्रीव मार डालेंगे॥ २॥

पिता बधे पर मारत मोही। राखा राम निहोर न ओही॥
पुनि पुनि अंगद कह सब पाहीं। मरन भयउ कछु संसय नाहीं॥

वे तो पिताके वध होनेपर ही मुझे मार डालते। श्रीरामजीने ही मेरी रक्षा की, इसमें सुग्रीवका कोई एहसान नहीं है। अंगद बार-बार सबसे कह रहे हैं कि अब मरण हुआ, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है॥ ३॥

अंगद बचन सुनत कपि बीरा। बोलि न सकहिं नयन बह नीरा॥
छन एक सोच मगन होइ रहे। पुनि अस बचन कहत सब भए॥

वानर वीर अंगदके वचन सुनते हैं; किन्तु कुछ बोल नहीं सकते। उनके नेत्रोंसे जल बह रहा है। एक क्षणके लिये सब सोचमें मग्न हो रहे। फिर सब ऐसा वचन कहने लगे— ॥ ४॥

हम सीता कै सुधि लीन्हें बिना। नहिं जैहैं जुबराज प्रबीना॥
अस कहि लवन सिंधु तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई॥

हे सुयोग्य युवराज! हमलोग सीताजीकी खोज लिये बिना नहीं लौटेंगे। ऐसा कहकर लवणसागरके तटपर जाकर सब वानर कुश बिछाकर बैठ गये॥ ५॥

जामवंत अंगद दुख देखी। कहीं कथा उपदेस बिसेषी॥
तात राम कहुँ नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु॥

जाम्बवान्‌ने अंगदका दुःख देखकर विशेष उपदेशकी कथाएँ कहीं। [वे बोले—] हे तात! श्रीरामजीको मनुष्य न मानो, उन्हें निर्गुण ब्रह्म, अजेय और अजन्मा समझो॥ ६॥

हम सब सेवक अति बड़भागी। संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी॥

हम सब सेवक अत्यन्त बड़भागी हैं, जो निरन्तर सगुण ब्रह्म (श्रीरामजी) में प्रीति रखते हैं॥ ७॥

दो०— निज इच्छाँ प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोच्छ सब त्यागि॥ २६॥

देवता, पृथ्वी, गौ और ब्राह्मणोंके लिये प्रभु अपनी इच्छासे [किसी कर्मबन्धनसे नहीं] अवतार लेते हैं। वहाँ सगुणोपासक [भक्तगण सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि और सायुज्य] सब प्रकारके मोक्षोंको त्यागकर उनकी सेवामें साथ रहते हैं॥ २६॥

एहि बिधि कथा कहहिं बहु भाँती। गिरि कंदराँ सुनी संपाती॥
बाहेर होइ देखि बहु कीसा। मोहि अहार दीन्ह जगदीसा॥

इस प्रकार जाम्बवान् बहुत प्रकारसे कथाएँ कह रहे हैं। इनकी बातें पर्वतकी कन्दरामें सम्पातीने सुनीं। बाहर निकलकर उसने बहुत-से वानर देखे। [तब वह

बोला—] जगदीश्वरने मुझको घर बैठे बहुत-सा आहार भेज दिया!॥ १॥

आजु सबहि कहँ भच्छन करऊँ। दिन बहु चले अहार बिनु मरऊँ॥
कबहुँ न मिल भरि उदर अहारा। आजु दीन्ह बिधि एकहिं बारा॥

आज इन सबको खा जाऊँगा। बहुत दिन बीत गये, भोजनके बिना मर रहा था। पेटभर भोजन कभी नहीं मिलता। आज विधाताने एक ही बारमें बहुत-सा भोजन दे दिया॥ २॥

डरपे गीध बचन सुनि काना। अब भा मरन सत्य हम जाना॥
कपि सब उठे गीध कहँ देखी। जामवंत मन सोच बिसेषी॥

गीधके वचन कानोंसे सुनते ही सब डर गये कि अब सचमुच ही मरना हो गया, यह हमने जान लिया। फिर उस गीध (सम्पाती) को देखकर सब वानर उठ खड़े हुए। जाम्बवान्‌के मनमें विशेष सोच हुआ॥ ३॥

कह अंगद बिचारि मन माहीं। धन्य जटायू सम कोउ नाहीं॥
राम काज कारन तनु त्यागी। हरि पुर गयउ परम बड़भागी॥

अंगदने मनमें विचारकर कहा—अहा! जटायुके समान धन्य कोई नहीं है। श्रीरामजीके कार्यके लिये शरीर छोड़कर वह परम बड़भागी भगवान्‌के परमधामको चला गया॥ ४॥

सुनि खग हरष सोक जुत बानी। आवा निकट कपिन्ह भय मानी॥
तिन्हहि अभय करि पूछेसि जाई। कथा सकल तिन्ह ताहि सुनाई॥

हर्ष और शोकसे युक्त वाणी (समाचार) सुनकर वह पक्षी (सम्पाती) वानरोंके पास आया। वानर डर गये। उनको अभय करके (अभय-वचन देकर) उसने पास जाकर जटायुका वृत्तान्त पूछा, तब उन्होंने सारी कथा उसे कह सुनायी॥ ५॥

सुनि संपाति बंधु कै करनी। रघुपति महिमा बहुबिधि बरनी॥

भाई जटायुकी करनी सुनकर सम्पातीने बहुत प्रकारसे श्रीरघुनाथजीकी महिमा वर्णन की॥ ६॥

दो०— मोहि लै जाहु सिंधुतट देउँ तिलांजलि ताहि।
बचन सहाइ करबि मैं पैहहु खोजहु जाहि॥ २७॥

[उसने कहा—] मुझे समुद्रके किनारे ले चलो, मैं जटायुको तिलाञ्जलि दे दूँ। इस सेवाके बदले मैं तुम्हारी वचनसे सहायता करूँगा (अर्थात् सीताजी कहाँ हैं सो बतला दूँगा) जिसे तुम खोज रहे हो उसे पा जाओगे॥ २७॥

अनुज क्रिया करि सागर तीरा। कहि निज कथा सुनहु कपि बीरा॥
हम द्वौ बंधु प्रथम तरुनाई। गगन गए रबि निकट उड़ाई॥

समुद्रके तीरपर छोटे भाई जटायुकी क्रिया (श्राद्ध आदि) करके सम्पाती अपनी

कथा कहने लगा—हे वीर वानरो! सुनो, हम दोनों भाई उठती जवानीमें एक बार आकाशमें उड़कर सूर्यके निकट चले गये॥ १॥

तेज न सहि सक सो फिरि आवा। मैं अभिमानी रबि निअरावा॥
जरे पंख अति तेज अपारा। परेउँ भूमि करि घोर चिकारा॥

वह (जटायु) तेज नहीं सह सका, इससे लौट आया। (किन्तु) मैं अभिमानी था इसलिये सूर्यके पास चला गया। अत्यन्त अपार तेजसे मेरे पंख जल गये। मैं बड़े जोरसे चीख मारकर जमीनपर गिर पड़ा॥ २॥

मुनि एक नाम चंद्रमा ओही। लागी दया देखि करि मोही॥
बहु प्रकार तेहिं ग्यान सुनावा। देहजनित अभिमान छड़ावा॥

वहाँ चन्द्रमा नामके एक मुनि थे। मुझे देखकर उन्हें बड़ी दया लगी। उन्होंने बहुत प्रकारसे मुझे ज्ञान सुनाया और मेरे देहजनित (देहसम्बन्धी) अभिमानको छुड़ा दिया॥ ३॥

त्रेताँ ब्रह्म मनुज तनु धरिही। तासु नारि निसिचर पति हरिही॥
तासु खोज पठइहि प्रभु दूता। तिन्हहि मिलें तैं होब पुनीता॥

[उन्होंने कहा—] त्रेतायुगमें साक्षात् परब्रह्म मनुष्यशरीर धारण करेंगे। उनकी स्त्रीको राक्षसोंका राजा हर ले जायगा। उसकी खोजमें प्रभु दूत भेजेंगे। उनसे मिलनेपर तू पवित्र हो जायगा॥ ४॥

जमिहहिं पंख करसि जनि चिंता। तिन्हहि देखाइ देहेसु तैं सीता॥
मुनि कइ गिरा सत्य भइ आजू। सुनि मम बचन करहु प्रभु काजू॥

और तेरे पंख उग आयेंगे; चिन्ता न कर। उन्हें तू सीताजीको दिखा देना। मुनिकी वह वाणी आज सत्य हुई। अब मेरे वचन सुनकर तुम प्रभुका कार्य करो॥ ५॥

गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका। तहँ रह रावन सहज असंका॥
तहँ असोक उपबन जहँ रहई। सीता बैठि सोच रत अहई॥

त्रिकूट पर्वतपर लङ्का बसी हुई है। वहाँ स्वभावहीसे निडर रावण रहता है। वहाँ अशोक नामका उपवन (बगीचा) है, जहाँ सीताजी रहती हैं। [इस समय भी] वे सोचमें मग्न बैठी हैं॥ ६॥

दो०— मैं देखउँ तुम्ह नाहीं गीधहि दृष्टि अपार।
बूढ़ भयउँ न त करतेउँ कछुक सहाय तुम्हार॥ २८॥

मैं उन्हें देख रहा हूँ, तुम नहीं देख सकते; क्योंकि गीधकी दृष्टि अपार होती है (बहुत दूरतक जाती है)। क्या करूँ? मैं बूढ़ा हो गया, नहीं तो तुम्हारी कुछ तो सहायता अवश्य करता॥ २८॥

जो नाघइ सत जोजन सागर। करइ सो राम काज मति आगर॥
मोहि बिलोकि धरहु मन धीरा। राम कृपाँ कस भयउ सरीरा॥

जो सौ योजन (चार सौ कोस) समुद्र लाँघ सकेगा और बुद्धिनिधान होगा वही श्रीरामजीका कार्य कर सकेगा। [निराश होकर घबराओ मत] मुझे देखकर मनमें धीरज धरो। देखो, श्रीरामजीकी कृपासे [देखते-ही-देखते] मेरा शरीर कैसा हो गया (बिना पाँखका बेहाल था, पाँख उगनेसे सुन्दर हो गया)!॥ १॥

पापिउ जा कर नाम सुमिरहीं। अति अपार भवसागर तरहीं॥
तासु दूत तुम्ह तजि कदराई। राम हृदयँ धरि करहु उपाई॥

पापी भी जिनका नाम स्मरण करके अत्यन्त अपार भवसागरसे तर जाते हैं, तुम उनके दूत हो, अतः कायरता छोड़कर श्रीरामजीको हृदयमें धारण करके उपाय करो॥ २॥

अस कहि गरुड़ गीध जब गयऊ। तिन्ह कें मन अति बिसमय भयऊ॥
निज निज बल सब काहूँ भाषा। पार जाइ कर संसय राखा॥

[काकभुशुण्डिजी कहते हैं—] हे गरुड़जी! इस प्रकार कहकर जब गीध चला गया, तब उन (वानरों) के मनमें अत्यन्त विस्मय हुआ। सब किसीने अपना-अपना बल कहा! पर समुद्रके पार जानेमें सभीने सन्देह प्रकट किया॥ ३॥

जरठ भयउँ अब कहइ रिछेसा। नहिं तन रहा प्रथम बल लेसा॥
जबहिं त्रिबिक्रम भए खरारी। तब मैं तरुन रहेउँ बल भारी॥

ऋक्षराज जाम्बवान् कहने लगे—मैं अब बूढ़ा हो गया। शरीरमें पहलेवाले बलका लेश भी नहीं रहा। जब खरारि (खरके शत्रु श्रीराम) वामन बने थे, तब मैं जवान था और मुझमें बड़ा बल था॥ ४॥

दो०— बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाइ।
उभय घरी महँ दीन्हीं सात प्रदच्छिन धाइ॥ २९॥

बलिके बाँधते समय प्रभु इतने बढ़े कि उस शरीरका वर्णन नहीं हो सकता, किन्तु मैंने दो ही घड़ीमें दौड़कर [उस शरीरकी] सात प्रदक्षिणाएँ कर लीं॥ २९॥

अंगद कहइ जाउँ मैं पारा। जियँ संसय कछु फिरती बारा॥
जामवंत कह तुम्ह सब लायक। पठइअ किमि सबही कर नायक॥

अंगदने कहा—मैं पार तो चला जाऊँगा। परन्तु लौटते समयके लिये हृदयमें कुछ सन्देह है। जाम्बवान्‌ने कहा—तुम सब प्रकारसे योग्य हो। परन्तु तुम सबके नेता हो, तुम्हें कैसे भेजा जाय?॥ १॥

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेहु बलवाना॥
पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना॥

ऋक्षराज जाम्बवान्‌ने श्रीहनुमान्‌जीसे कहा—हे हनुमान्! हे बलवान्! सुनो, तुमने

यह क्या चुप साध रखी है? तुम पवनके पुत्र हो और बलमें पवनके समान हो। तुम बुद्धि-विवेक और विज्ञानकी खान हो॥ २॥

कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं॥
राम काज लगि तव अवतारा। सुनतहिं भयउ पर्बताकारा॥

जगत्‌में कौन-सा ऐसा कठिन काम है जो हे तात! तुमसे न हो सके। श्रीरामजीके कार्यके लिये ही तो तुम्हारा अवतार हुआ है। यह सुनते ही हनुमान्‌जी पर्वतके आकारके (अत्यन्त विशालकाय) हो गये॥ ३॥

कनक बरन तन तेज बिराजा। मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा॥
सिंहनाद करि बारहिं बारा। लीलहिं नाघउँ जलनिधि खारा॥

उनका सोनेका-सा रंग है, शरीरपर तेज सुशोभित है, मानो दूसरा पर्वतोंका राजा सुमेरु हो। हनुमान्‌जीने बार-बार सिंहनाद करके कहा—मैं इस खारे समुद्रको खेलमें ही लाँघ सकता हूँ॥ ४॥

सहित सहाय रावनहि मारी। आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी॥
जामवंत मैं पूँछउँ तोही। उचित सिखावनु दीजहु मोही॥

और सहायकोंसहित रावणको मारकर त्रिकूट पर्वतको उखाड़कर यहाँ ला सकता हूँ। हे जाम्बवान्! मैं तुमसे पूछता हूँ, तुम मुझे उचित सीख देना [कि मुझे क्या करना चाहिये]॥ ५॥

एतना करहु तात तुम्ह जाई। सीतहि देखि कहहु सुधि आई॥
तब निज भुज बल राजिवनैना। कौतुक लागि संग कपि सेना॥

[जाम्बवान्‌ने कहा—] हे तात! तुम जाकर इतना ही करो कि सीताजीको देखकर लौट आओ और उनकी खबर कह दो। फिर कमलनयन श्रीरामजी अपने बाहुबलसे [ही राक्षसोंका संहार कर सीताजीको ले आयेंगे, केवल] खेलके लिये ही वे वानरोंकी सेना साथ लेंगे॥ ६॥

छं०— कपि सेन संग सँघारि निसिचर रामु सीतहि आनिहैं।
त्रैलोक पावन सुजसु सुर मुनि नारदादि बखानिहैं॥
जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।
रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई॥

वानरोंकी सेना साथ लेकर राक्षसोंका संहार करके श्रीरामजी सीताजीको ले आयेंगे। तब देवता और नारदादि मुनि भगवान्‌के तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाले सुन्दर यशका बखान करेंगे, जिसे सुनने, गाने, कहने और समझनेसे मनुष्य परमपद पाते हैं और जिसे श्रीरघुवीरके चरणकमलका मधुकर (भ्रमर) तुलसीदास गाता है।

दो०— भव भेषज रघुनाथ जसु सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि॥ ३० (क)॥

श्रीरघुवीरका यश भव (जन्म-मरण) रूपी रोगकी [अचूक] दवा है। जो पुरुष और स्त्री इसे सुनेंगे, त्रिशिराके शत्रु श्रीरामजी उनके सब मनोरथोंको सिद्ध करेंगे॥ ३० (क)॥

सो०— नीलोत्पल तन स्याम काम कोटि सोभा अधिक।
सुनिअ तासु गुन ग्राम जासु नाम अघ खग बधिक॥ ३० (ख)॥

जिनका नीले कमलके समान श्याम शरीर है, जिनकी शोभा करोड़ों कामदेवोंसे भी अधिक है और जिनका नाम पापरूपी पक्षियोंको मारनेके लिये बधिक (व्याधा) के समान है, उन श्रीरामके गुणोंके समूह (लीला) को अवश्य सुनना चाहिये॥ ३० (ख)॥

मासपारायण, तेईसवाँ विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने चतुर्थः सोपानः समाप्तः।

कलियुगके समस्त पापोंके नाश करनेवाले श्रीरामचरितमानसका यह चौथा सोपान समाप्त हुआ।

(किष्किन्धाकाण्ड समाप्त)